REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2022

अज्ञेय के कथा साहित्य में धार्मिक और सांस्कृतिक विचार

सविता गुप्ता[1] & डॉ. प्रेमशंकर शुक्ल[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एस.आर.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय हनुमना, जिला रीवा (म.प्र.)

सारांश –

अज्ञेय अपने लेखकीय जीवन में वास्तव में धार्मिक सांस्कृतिक, उदारता के जमीन पर खड़े होकर परम्परा स्मृति से जुड़े विविध पक्षों पर विचार कर रहे थे। अज्ञेय ने संकीर्ण हिन्दू अस्मिता पर जोर देने के कारण अनमुक्त बौद्धिकता की साहित्यिक पहचान पर जोर दिया है। उनके द्वारा किसी धर्म पर धार्मिक मिथकों को साहित्य की विषय वस्तु न बनाया, यही उनकी उन्मुक्त धार्मिक चेतना का साक्ष्य है। उन्होंने हिन्दू व मुस्लिम साम्प्रदायिकता को निशानें में रखते विभाजन हुआ। शरणार्थी रूमांचकों पर छः कहानियाँ लिखी। ये कहानियां है–लेहर बॉम्सन, शरणार्थी, बदला, रमन्ते तत्र देवता, मुस्लिम–मुस्लिम भाई–भाई, नारंगियाँ एवं ग्यारह कवितायें लिखी थी। चरम पागलपन उग्रसामुहिक मानवता की लौह बुझती नहीं। अपनी कहानियों में उन्होंने ऐसे चरित्रों का वर्णन किया है जो धर्म की आक्रामक कट्टरता का समर्थन करने के स्थान पर उसका प्रतिकार करते है।

मुख्य शब्द – अज्ञेय, कथा, साहित्य, धार्मिक एवं सांस्कृतिक।

प्रस्तावना –

शरणदाता कहानी के माध्यम से अज्ञेय ने धार्मिक चेतना को उद्घाटित किया है। देश का विभाजन हो रहा था। दैविन्दर लाल और रफीकुद्दीन वकील में पुरानी दोस्ती थी। परिवेश गला घोटू हो गया था। इस दृश्य का उल्लेख करते हुये अज्ञेय ने लिखा है कि–"अब दैविन्दर लाल ने कहा, "मैं समझता हूँ कि मेरी वजह से आपको जलील होना पड़ रहा है और खतरा उठाना पड़ रहा है सो अलग। लेकिन आप मुझे जाने दीजिए। मेरे लिए आप जोखिम में न पड़े। आपने जो कुछ किया है उसके लिए मैं बहुत शुक्रगुजार हूँ। आपका एहसान...."[1]

उक्त कथन में धार्मिक उन्माद के फलस्वरूप व्यक्ति–व्यक्ति के बीच अहंविश्वास की धारणाएँ अभिव्यंजित हुई है। मुस्लिम–मुस्लिम भाई–भाई शीर्षक कहानी के अन्तर्गत लेखक ने मानवीय मूल्यों के खंडित होते हुये दृश्यों को इस प्रकार स्पष्ट किया है –सकीना ने कहा– "या अल्लाह, क्या जाने क्या होगा।" अमिना बोली, "सुना है एक ट्रेन आने वाली है–स्पेशल। दिल्ली से सीधी पाकिस्तान जायेगी–उसमें सरकारी मुलाजिम जा रहे हैं न? उसी में क्यों न बैठें?"

"कब जाएगी?"
"अभी घंटे–डेढ़ घंटे बाद जाएगी शायद"
जमीला ने कहा "उसमें हमें बैठने देंगे? अफसर होंगे सब"
"आधीर तो मुसलमान होंगे–बैठने क्यों न देंगे?"
"हाँ आखिर तो अपने भाई हैं।"[2]

उक्त प्रसंग में लेखक ने स्पष्ट किया है कि धर्मान्धता लोक जीवन के लिए अभिशाप है। हिन्दू और मुस्लिम की कट्टरवादिता ने देश, समाज, जाति और वर्ग में सभी को बाँटकर रखा है।

'बदला' कहानी के अन्तर्गत हिन्दू ने सुरैया की ओर देखते हुए कहा, "दिल्ली में कुछ लोग बताते थे, वहाँ उन्होंने क्या–क्या जुल्म किये हैं, हिन्दुओं और सिखों पर। कैसी–कैसी बातें वे बताते थे, क्या बताऊँ, ज़बान पर लाते शर्म आती है। औरतों को नंगा करके।"[3]

अध्ययनोपरांत यह कहना युक्तिसंगत होगा कि अज्ञेय जी ने धार्मिक चेतना की कुण्ठाओं को प्रबल रूप से अपने कथा–साहित्य में उठाया है। धर्म और ईश्वर के आग्रह को दरकिनार करते हुये उन्होंने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई, के धार्मिक उन्माद को मानव जीवन के लिए संघात्मक प्रक्रिया बताया है। धार्मिक धारणा मानव प्रेम के ऊपर कुठाराघात करती है।

मानवता के तटस्थ हो जाने के स्थान पर उसके बचाव में उतर आते हैं। उनकी कहानी 'बदला' एक ऐसे सिक्ख की चरित्र का वर्णन है जो खून खराबे के स्थान पर लोगों को सुरक्षित उनके स्थान पर पहुँचा रहा है और लोगों के मन में बैठी क्रूर बदले की भावना के विपरीत आचरण करने का जोखिम उठा रहा है। इस प्रकार अज्ञेय न केवल राजनैतिक स्तर पर किसी प्रकार की धार्मिकता के विरोधी रहे बल्कि उनकी जय जानकी पात्रा भी किसी भी तरह कि छिछली धार्मिकता से मुक्त सांस्कृतिक आयोजन की साधिका थी।

आज जब हम फिर से धर्म और समाज की प्रश्न में जूझने में विवश है कि और पा रहे हैं कि अध्यापक की इस लगातार उपेक्षा से हिंदी साहित्य ने जो आध्यात्मिक शून्य पैदा किया है उसे छिछली नकली धार्मिकता ने पूरी आक्रमता के साथ भर दिया है। इस प्रकार अज्ञेय के कथा साहित्य में धार्मिक चेतना के विविध पक्ष सामने आ जाते हैं।

प्रत्येक संवेदनशील प्राणी जानता है कि यथार्थ बाहरी जगत भी नहीं, भीतरी जगह भी यथार्थ है। धार्मिक चेतना पर भी अज्ञेय ने विशेष चिंतन किया है। अज्ञेय के अनुसार धार्मिक चेतना प्रारम्भ से भी धार्मिक रही है और अब भी है समाज के धार्मिक होने पर हम उसे सदसयता से अलग नहीं कर सकते हैं। अज्ञेय साहित्य में धर्म को व्यापक महत्व देते है।

सांस्कृतिक चेतना अनुभूति की सघनता तथा चिंतन की सूक्ष्मता के समन्वित आधार पर स्वरूप ग्रहण करती है। अनुभूति और चिंतन चेतना की ये दोनों ही सीमाएँ है। अनुभूति का संबंध ह्रदय की संवेदनशीलता से है और चिंतन वस्तु स्थिति के लिए उठने वाली शंकाओं, जिज्ञासाओं तथ प्रश्नों के बौद्धिक समाधान खोजने का दूसरा नाम है।

सांस्कृतिक चेतना व्यक्तिगत स्तर पर अनुभूति होकर वैयक्तिक स्वार्थ की नहीं अपितु सामाजिक हित की होती है। साहित्यकार सृजन के दौरान अपने अहम् निज का इस तरह विस्तार करता है कि सम्पूर्ण विश्व के राग द्वेष उसमें समा जाते है। वह सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त एक तत्व का दर्शन करने लग जाता है वही चेतना का सर्वोज्जवल एवं सर्वोत्तम रूप है जिसे सांस्कृतिक चेतना कहा जा सकता है। प्रथम स्तर पर लेखक चेतन सम्पन्न होने पर भी अपनी कृति में सांस्कृतिक रूप प्रस्तुत नहीं कर पाते है।

तत्कालीन रचनाकार अपने कथाकृति में सांस्कृतिक मूल्यों का यथातथ्य चित्रण कर देते हैं। साहित्य में सांस्कृतिक चेतना के कई उदाहरण मिलते है। जिसके अन्तर्गत अज्ञेय घटनाओं, पात्रों अथवा संबंधों का संयोजन इस प्रकार करते हैं कि पाठक सहजरूप में जागरूक हो। लेखक कोई उपदेशक सुधारक अथवा क्रांतिकारी के रूप में ना आकर वस्तुस्थिति का चित्रण करते हुये एक मूल सा संकेत दे जाता है। यह संकेत ही कृति के संकट का मुख्य उद्देश्य होता है। इसमें लेखक दोनों ही स्थितियों को सामने रखकर स्वयं ही निर्णय लेने पर विवश सा हो जाता है। यह निर्णय होने की मानसिक उपलब्धि ही चेतना सम्पन्न होती है। अज्ञेय के साहित्य में प्रतिपादित सांस्कृतिक चेतना किसी वाद या पूर्वाग्रह में ग्रस्त नहीं है।

सांस्कृतिक चेतना के संदर्भ में अज्ञेय ने जिज्ञासा, अमरबल्लरी, क्षमा, कड़ियाँ, पहाड़ी जीवन, शिक्षा जैसी कहानियाँ लिखी है। शिक्षा कहानी में गुरु और शिष्य की सांस्कृतिक दृष्टि का अप्रतिम दृष्टांत प्रस्तुत किया गया है। यथा–स्थिर दृष्टि से शिष्य को देखते रहे। न उस दृष्टि के खुलेपन में कोई कमी हुई, न उसकी रहस्यमयता में, फिर उनका चेहरा एकाएक एक वासल्यपूर्ण स्मृति में खिल आया और उन्होंने कहा, "तो तुमने देश लिया, इतना ही ज्ञान है। इससे अधिक मेरे पास सिखाने को कुछ नहीं है। यह मेरे पास नहीं है, सर्वत्र बिखरा हुआ है। मैं कहा था कि कोई किसी को कुछ सिखाता नहीं है। उन्मेष भीतर से होता है। गुरु निमित्त हो सकता है। किन्तु निमित्त तो कुछ भी हो सकता है।"[4]

अज्ञेय की दृष्टि से प्रदेशों, उसकी भाषाओं, संस्कृतियों में आपस की सहानुभूति, सहयोग भावना और परस्पर–निर्भरता के विकास के लिए निरी जानकारी नहीं, एक समग्र दृष्टि चाहिए। ऐतिहासिक सन्दर्भ को ध्यान में रखें तो ऐसी समग्र दृष्टि न केवल प्रादेशिक संस्कृतियों और भाषाओं के अस्तित्व और अधिकारों को नकारेगी नहीं बल्कि यह स्वीकारेगी कि प्राचीनतम काल से भारतीय भूमि पर अलग–अलग संस्कृतियां विकास पाती रही हैं, उनका एक स्वायत्त जीवन रहा है और अपनी–अपनी भाषा में ये प्रादेशिक संस्कृतियां अपने जीवन और आदर्शों को अभिव्यक्त देती रही हैं।[5]

अज्ञेय के अनुसार, इन सांस्कृतियों की प्रतिभा ने दोनों दिशाओं में विकास किया, एक तरफ प्रदेश के समग्र जीवन को अभिव्यक्ति देने और दूसरी ओर उसे एक व्यापकतर इकाई के साथ जोड़ने की। जिनमें दूसरे प्रकार का बोध नहीं रहा, या क्षीण रहा, वे स्वयं दुर्बल होती गयी, क्रमशः निगति को प्राप्त हुई या अपने को आक्रान्त समझने लगी जिससे उनका विकास रुक गया। वे 'जो था' की रक्षा में लगकर जड़ परम्परावादी हो गयी। जीवित और विकासमान संस्कृतियां नहीं रहीं। दूसरी ओर जिन संस्कृतियों में सतत एक वृहत्तर इकाई के जीवन में योग दिया वे निरन्तर विकास करती हुई अपने क्षेत्र के बाहर के जीवन को प्रभावित करती रहीं, दूर तक सम्मान पाती रहीं।

अज्ञेय ने सदैव चाहा कि उनके लेखन के माध्यम से एक भारतीय चरित्र का रूप उभरे। उनके पात्र चाहे भारतीय हों, चाहे अभारतीय और भारतीय होकर चाहें एक प्रदेश के हों, चाहें दूसरे–सम्प्रेष्य बात यह हो कि एक भारतीय उस तरह देखता, सोचता, भोगता और जीता है कि इस तरह देखने, सोचने, भोगने और जीने वाले को भारत ने बनाया है, एम समग्र भारत ने।[6]

अज्ञेय कहते हैं कि, आज कल्चरल प्रोग्राम के नाम पर जो नृत्य, संगीत, चित्रकला, प्रदर्शनी अथवा हास्य कवि सम्मेलन ही होते हैं उनके मूल में संस्कृति की यही परिभाषा होती है। संस्कृति की चौथी परिभाषा अपने को केवल उत्पादन के उपकरण पर आधारित करना चाहती है, यह केवल औजारों के ऐतिहासिक विकास तक ही अपने को सीमित रखना चाहते हैं।[7]

मूल्य–दृष्टि और संस्कृतियां भी लगातार बदलती हैं परन्तु अज्ञेय कहते हैं कि, संस्कृति केवल भौतिक परिस्थिति का परिणाम नहीं है क्योंकि वह अनिवार्यता भौतिक जगत् और जीव–जगत के साथ मानव–जाति के सम्बन्ध पर आधारित है और वह सम्बन्ध ज्ञान के विकास और संवेदन के विस्तार के साथ–साथ बदलता है। संस्कृति उन सम्बन्धों का निरूपण भी करती है, निर्धारण भी करती है, मूल्यांकन भी करती है और उन्हीं सम्बन्धों की अभिव्यक्ति भी है अर्थात् वह एक साथ ही उनका परिणाम भी है ओर उनका आधार भी।

विश्लेषण –

हमारी संस्कृति मूलतः एक धार्मिक संस्कृति रही है और अब भी है। भारतीय परिभाषा में धर्म वह नहीं जो कि पश्चिम एशिया अथवा योरोप में समझा जाता है अर्थात् उसकी जड़ किसी अनिवार्य मत विश्वास में नहीं है जिससे इधर–उधर हटना हैरेसी अथवा कुफ्र हो जाता है। मत–विश्वास एकान्ततः व्यक्तिगत चीजमानी गई है और जीवन–दृष्टि तथा तदनुकूल आचरण पर बल दिया गया है। इसीलिए कभी–कभी कहा जाता है कि भारतीय समाज एक धर्मरहित किन्तु अत्यन्त धार्मिक समाज है–ए रेलिजियस सोसायटी विदाउट ए रेलियजन। धर्म की यह विलक्षण और अद्वितीय परिभाषा भारतीय परंपरा और दृष्टि की एक विशेषता है। अज्ञेय के विचार से यदि धर्म की यह परिकल्पना अधिक व्यापक रूप से अपनायी गई होती तो संसार के इतिहास में लगातार होते रहे अत्याचार काफी कम हुए होते। आज भी इसकी प्रासंगिकता है हिन्दु समाज के भीतरी दोषों और उसकी परिपाटियों को अनदेखा किये बिना भी हम परिकल्पना की उदात्तता पर बल दे सकते हैं।[8]

संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना का नारी से और नारी के स्थान से गहरा संबंध है, यह एक स्वयंसिद्ध बात है। अज्ञेय कहते हैं कि, भारतीय संस्कृति का अभिमान करने वाले सहजता से कहते हैं कि, हमारी संस्कृति में तो नारी पूज्य है–यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते...' परन्तु जो स्मृतियों और शास्त्रों में विदित है और जो आज प्रत्यक्ष है उसका वैषम्य भी देखना होगा। दो पुरुषों की लड़ाई में माँ–बहिन की गालियां क्या नारी–पूजा के सिक्के का दूसरा पहलू नहीं है? मंदिर में भी देवता की खण्डित मूर्ति की पूजा नहीं होती। हमारा परिवेश ऐसे खण्डहरों से भरा पड़ा है, नारी को देवता बनाकर हमने उसे भी उतना ही असहाय बना रखा है और सदियों से उसके प्रति अन्याय करते आये हैं। उसकी प्रतिमा भी एक बार खण्डित अथवा लांछित, चाहे झूठे ही, हो जाने पर न केवल पूज्य नहीं रहती बल्कि मानो गिनती से ही बाहर हो जाती है। पर उस पर क्या–क्या अत्याचार हुए उससे मानो किसी का कोई सारोकार ही नहीं रहता–उस इकाई को हमने अपने बोध के क्षितिज से परे ठेल दिया है।

अज्ञेय एक ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने सांस्कृतिक चेतना के अन्तर्गत नये चिंतन और नये दृष्टिकोण के माध्यम से उपन्यास और कहानी की रचना करते हैं। शेखर : एक जीवनी, भाग–1, सांस्कृतिक चेतना का एक अनुपम उदाहरण अवलोकनीय है – "मैं एक संदेश लाया हूँ, जो कि मेरा अपना नहीं है, जो मैंने अपने वंश–विकास से पाया है और जिसे मैं एक बाह्य प्रेरणा से बाध्य होकर कहूँगा। मेरे सब कर्म उसी प्रेरणा के फल हैं, जो मुझसे बाह्य हैं, जिससे मैं विभिन्न हूँ। मैं चाहता हूँ, उसी प्रेरणा के भविष्य को इंगित कर जाऊ, उसे अपने व्यक्तित्व से अलग एक शक्ति, एक विभूति समझकर।"[9]

अज्ञेय के मत से नारी को पूज्य मानने में और उसे हमेशा माँ–बहिन, बहू–बेटी आदि के रूप में देखने में हम वास्तव में उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को नकारने का ही रास्ता निकालते रहे हैं। पूजा और गाली एक ही सिक्के के दो रूप हैं। उसी तरह यह भी सच है कि नारी को हमेशा किसी रिश्ते में देखना जहां उसे आत्मीयता का गौरव देना है। वहां उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का नकार भी है।[10]

संस्कृति की चेतना उत्सवों और मनोरंजनों के प्रति भी एक नयी दृष्टि देती है। सिनेमा और कामिक ही नहीं बच्चों के खेल की भी संस्कृति में अपना स्थान और प्रभाव है, ये संस्कार देने और पाने के साधन हैं। इसीलिए सांस्कृतिक प्रभाव के साधन भी बनाये जा सकते हैं। संस्कृति और श्रम के रिश्ते भी चेतना के क्षेत्र में आने चाहिए। अलग–अलग संस्कृतियों में श्रम के बारे में अलग–अलग धारणाएं रही हैं और अज्ञेय के मत से उन धारणाओं को सम्पूर्णतया आर्थिक सम्बन्ध का परिणाम बताना वास्तव में सांस्कृतिक प्रक्रिया को अधूरा समझ कर उसे विकृत करना है। निःसन्देह संस्कृतियों के विकास का और उस पर आधारित श्रम–सम्बन्धों के परिवर्तन का अद्वितीय महत्व रहा है।[11]

अज्ञेय कहते हैं कि अगर हम अपनी संस्कृति के अलावा दूसरी संस्कृतियों के मूल्यों को भी पहचान और समझ सकते हैं तो हमारे संवेदन का विस्तार बढ़ता है, हम अधिक संस्कारवान होने की अर्हता प्राप्त करते हैं और इसीलिए, अपनी संस्कृति को सम्पन्नतर बनाने की स्थिति में आते हैं। 'अकेले होने' और 'साथ होने' की व्यापक परिकल्पनाओं ने विभिन्न संस्कृतियों को जो कुछ दिया है, उसे हम पहचान सकते हैं तो हम टकराहट की स्थिति से ऊपर उठ सकते हैं। यह 'उपर उठ सकना' ही हमारे सांस्कृतिक उपक्रम के मूल में होता है।

अन्तोगत्वा अज्ञेय के तीनों उपन्यासों की कथा भूमि में काफी दूरियां हे। नदी के द्वीप एवं शेखर एक जीवनी दोनो उपन्यास व्यक्ति प्रधान है जहाँ शेखर एक जीवनी में व्यक्ति क्रांति के बिस्फोट में फैल रहा है। वही नदी के द्वीप में व्यक्ति प्रेम को लेकर सिमट रहा है। अज्ञेय का तीसरा उपन्यास अपने–अपने अजनबी' कृति है, जिसमें विचार, दर्शन, चिंतन और सिद्धांतों की सघनता उल्लेखनीय और बेजोड़ है।

अज्ञेय के उपरोक्त सभी उपन्यास आधुनिक मनोविज्ञान से प्रभावित है किन्तु नदी के द्वीप का मनोवैज्ञानिक पक्ष अधिक समृद्ध है। शेखर जैसे सशक्त चरित्र का निर्माण करना अज्ञेय के स्वस्थ्य चिंतन की महती उपलब्धि है। अज्ञेय सम्पूर्ण समाज को उसके वास्तविक रूप में चित्रित करने की अपेक्षा एक व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उसके वास्तविक जीवन की सूक्ष्मतम महसूस करने के कार्य को अधिक उपयोगी या श्रेयस्कर समझते है।

अज्ञेय के उपन्यासें मे अनवरत एक अन्वेषण की प्रक्रिया प्राप्त होती हे। मानव मूल्यों की विराटता की मर्यादा के नये प्रतिमानों की जो आधुनिक सामाजिक सौंदर्य में उतने ही समपृक्त हैं, जितने प्रचलित परंपरागत सामाजिक मान्यताओं से विच्छिन है। यह जीवन के आत्मीय अनुभवों का प्रत्यावलोकन की एक प्रक्रिया है जो व्यक्तिवाद की नई अभिव्यंजना करती है।

अज्ञेय के सभी उपन्यासों में लेखक भय, कुण्ठा अहं, काम और भयग्रस्त अस्तित्व के लिए अपनी मुक्ति की माँग कर रहा है। 'नदी के द्वीप' में इन्हीं सब कमजोरियों के साथ समस्त एशिया अथवा पृथ्वी गोलार्द्ध की मानवता युद्ध की भीषण ज्वलाओं के अंदर से अपनी भूमि का आवाह्न करती हुई दिये दे रही है और अपने अपने अजनबी में यूरोप युद्ध क्षुब्ध बिक्षुब्ध क्षत बिच्क्षत मानवता अपनी मुक्ति का आश्रय खोजने में व्यस्त है अन्तर केवल इतना है कि शेखर की दृष्टि परतंत्र भारत पर रेखा और भुवन के नेत्र यूरोप की ओर उठे हैं। यूरोप की भयभीत आंखें भारत से अपनी मुक्ति की माँग कर रही है।

अज्ञेय के उपन्यासों में स्वाजाति रीति की भी चर्चा हुई है। नदी के द्वीप उपन्यास से ऐसा लगता है कि प्राचीन रूढ़ियों तथा परम्पराओं के प्रति लेखक का ह्रदय विद्रोही हो उठा है। अज्ञेय का व्यक्तित्व किसी भी पुराने व नये वाद जीवन सिद्धांत के आगे पूरा–पूरा समर्पित नहीं हो सकता है। वह अनेक वादों के सत्यों को स्वीकार करके उन्हें अपने व्यक्तित्व के माध्यम से एक नया रूप देना चाहते है। यह फ्रायड एडलर, युंग, मार्क्स, सार्त्र, इलियट आदि चिंतकों का प्रभावा है। एक साहित्यकार का दूसरे साहित्यकार से प्रभावित होना स्वाभाविक है। विशेषतयः जब दोनों सामाजिक युगचेतना एक दूसरे से मेल रखती हो। इस परिप्रेक्ष्य में निर्मल वर्मा की बात उठाई जा चुकी है कि, उनकी धारणा भारतीय और पश्चिम से अभिभूत दिखती है, जबकि अज्ञेय की भारतीयता भारतीय चिन्तन–मनन और भारतीय समाज के विश्वासों, आस्थाओं और अवधारणाओं पर आधारित है।

अज्ञेय का मानना है, कि महाभारत काल से ही इस देश में यह समझ काम करती रही है कि भारत एक इकाई है, भौगोलिक इकाई भी एवं सांस्कृतिक इकाई भी और भारतीय रचना में भारत भूमि को एक इकाई के रूप में ही देखा गया है।

निष्कर्ष –

सांस्कृतिक समग्रता पर विचार करते हुए अज्ञेय ने लिखा है, मेरे पात्र चाहे भारतीय हों, चाहे अभारतीय, और भारतीय होकर चाहे एक प्रदेश के हों, चाहे दूसरे प्रदेश में सम्प्रेष्य बात यह है कि एक भारतीय उस तरह देखता, सोचता, भोगता और जीता है, जिस तरह देखने, सोचने, भोगने और जीने वाले को भारत ने बनाया है, एक समग्र भारत ने। लेखक और राज्याश्रय कोई नया मुद्दा नहीं है बल्कि आज लेखकों को ज्यादा राज्याश्रय प्राप्त है। अज्ञेय नया वितान सृजित करता है। उनका मन्तव्य यह था कि सांस्कृतिक चेतना में अभिजात्य या उच्च वर्ग के सरोकार की बात नहीं है बल्कि पूरे समाज को अपने में समादृत करती है।

संदर्भ –

[1] संपादक कृष्णदत्त पालीवाल – अज्ञेय रचनावली, खण्ड–3, शरणदाता, पृष्ठ 561
[2] संपादक कृष्णदत्त पालीवाल – अज्ञेय रचनावली, खण्ड–3, मुस्लिम–मुस्लिम भाई–भाई, पृष्ठ 569
[3] संपादक कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली, खण्ड–3, बदला, पृष्ठ 581
[4] संपादक कृष्णदत्त पालीवाल – अज्ञेय रचनावली, खण्ड–3, शिक्षा, पृष्ठ 438
[5] पुष्पा शर्मा – अज्ञेय : गद्य रचना के विविध आयाम, पृष्ठ 140
[6] वही, पृष्ठ 142
[7] अज्ञेय – केन्द्र और परिधि, पृष्ठ 147
[8] अज्ञेय – सर्जना और संदर्भ, पृष्ठ 186
[9] संपादक कुमार विमल – अज्ञेय गद्य रचना संचयन, शेखर : एक जीवनी, भाग–1, पृष्ठ 367
[10] अज्ञेय – धार और किनारे, पृष्ठ 150
[11] अज्ञेय – सर्जना और संदर्भ, पृष्ठ 150–151